Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 9, Issue 2 | November 2021 - April 2022 | pp. 40-44

प्राचीन भारत में नारी शिक्षा (प्रारम्भ से पूर्व गुप्तकाल के विशेष सन्दर्भ में)

प्रिया पाण्डेय

शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

नारी शिक्षा समाज का आधार है। समाज द्वारा पुरुष को शिक्षित करने का लाभ केवल पुरुष को होता है जबकि महिला शिक्षा का स्पष्ट लाभ परिवार, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र को होता है। भारतीय इतिहास के अत्यन्त प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति प्रायः पुरुषों के समान ही थी। स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी माना जाता था, और यह समझा जाता था कि स्त्री के बिना पुरुष का कोई यज्ञ व धार्मिक कृत्य पूरा नहीं हो सकता। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करती थी, और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में उनका हाथ बंटाती थीं। कालान्तर में स्त्रियों की स्थिति हीन हो गई, वे परदे में रहने लगी, शिक्षा के अधिकार से उन्हें वंचित कर दिया गया और सार्वजनिक जीवन से उनका सम्बन्ध प्रायः नष्ट हो गया। स्त्रियों की शिक्षा में यह परिवर्तन किस प्रकार आया, यह एक ऐतिहासिक विवेचन का महत्त्वपूर्ण विषय है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

संकेताक्षर—*ऋषिका, साहित्य, ब्रह्मवादिनी, गुरुकुल, ज्ञान-पिपासु, ब्रह्मचर्य, कुप्रथा*

प्रस्तावना

हड़प्पा संस्कृति के अवशेषों पर भारत में वैदिक सभ्यता का आविर्भाव हुआ। इस सभ्यता की जानकारी के स्रोत वेद होने के कारण इसे वैदिक युग की संज्ञा दी गई। वेदों में नारी की स्थिति को लेकर अनेक भ्रांतियाँ समाज में प्रचलित है। वेदों पर यह आक्षेप किया जाता है कि वेदों के कारण नारी जाति को सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा तथा अशिक्षा इत्यादि कुप्रथाओं का दंश झेलना पड़ा है। वेदों में स्त्रियों को समुचित स्थान ना देने अथवा निम्न स्थान देने का दोषारोपण भी किया जाता रहा है, किन्तु वेदों पर यह दोषारोपण नितान्त अनुचित एवं अप्रासंगिक है।

शोध प्रविधि

अध्ययन का क्षेत्र नारी शिक्षा से सम्बन्धित है। जिसमें प्राचीन काल प्रमुखतः वैदिक काल से लेकर पूर्व गुप्तकाल तक नारी शिक्षा की स्थिति पर ध्यान केंद्रित किया गया है। शोध हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक व तृतीयक स्रोतों की सहायता ली गई है।

जिस प्रकार दो दलों वाले बीज से ही वृक्ष बनता है, दो सम्पुटों वाले सीप में ही मोती जन्म लेता है, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष इन दोनों अंगों के समुचित सहयोग व समन्वय से ही किसी भी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति का निर्माण होता है।[1]

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें कुल 1028 मंत्र है। इन मन्त्रों में से 276 मंत्र स्त्री ऋषियों अथवा ऋषिकाओं द्वारा लिखे गये है। रोमशा, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, सूर्या, सिकता, विश्ववारा, इन्द्राणी, उर्वशी, सार्पराज्ञी इत्यादि ऋषिकाओं का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। स्त्रियों को लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थी। गोभिल गृहसूत्र में कहा गया है कि अशिक्षित पत्नी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होती थी। संगीत शिक्षा पर

ज्यादा जोर दिया जाता था। **वैदिक युग** में स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण कर वेदाध्ययन एवं प्रात:-सायं होम आदि कर्म करती थी। हरित संहिता के अनुसार वैदिक काल में शिक्षा ग्रहण करने वाली दो प्रकार की कन्याएँ होती थी—

1. ब्रह्मवादिनी
2. सद्योवात्

'ब्रह्मवादिनी' एक समस्त पद है, जिसका अर्थ है—ब्रह्म को या ब्रह्म के विषय में बोलने वाली स्त्री। ब्रह्मवादिनी आजन्म ब्रह्मचारिणी रहती थी, वे तपोपमय जीवन बिताते हुए शास्त्रचर्चा में मग्न रहती थीं। ऐसी ब्रह्मवादिनी नारियों में गार्गी, मैत्रेयी उल्लेखनीय है। जबकि 'सद्योवात' 15 या 16 वर्ष की उम्र तक, जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता था, तब तक अध्ययन करती थी। इन्हें प्रार्थना एवं यज्ञों के लिए आवश्यक महत्त्वपूर्ण वैदिक मन्त्र पढ़ाये जाते थे तथा संगीत एवं नृत्य की भी शिक्षा दी जाती थी।

ब्रह्मवादिनी ममता दीर्घतमा ऋषि की माता थी। ये महान् विदुषी और ब्रह्मज्ञान सम्पन्न थी। अग्नि के उद्देश्य से किया हुआ इनका स्तुति पाठ ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल के दशम सूक्त की ऋचा में मिलता है। अत्रि महर्षि के वंश में उत्पन्न विश्ववारा ने ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के अठाइसवें सूक्त में वर्णित छ: ऋचाओं की रचना की थी। ब्रह्मवादिनी अपाला ने ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के 91वें सूक्त की एक से सात तक की ऋचाएँ इन्हीं की संकलित है।

इसी प्रकार ब्रह्मवादिनी घोषा, एक प्रसिद्ध विदुषी थी। उन्होनें स्वयं ब्रह्मवादिनी के रूप में ब्रह्मचारिणी कन्या के समस्त कर्त्तव्यों का उल्लेख ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 39 से 41वें सूक्त तक केवल 2 सूक्तों में किया है। ब्रह्मवादिनी सूर्या ने ऋग्वेद के विवाह सम्बन्धी सूक्त की रचना दसवें मण्डल के 85 वें सूक्त की 47 ऋचाओं के रूप में की। वैदिक विदुषियों के इसी क्रम में ब्रह्मवादिनी वाक् का नाम आता है, जो अम्भृण ऋषि की कन्या थी। ये प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी थी और इन्होंने भगवती देवी के साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के 125वें सूक्त में 'देवी सूक्त' के नाम से जो आठ मन्त्र हैं, वे इन्हीं के रचे हुए हैं।

उत्तर वैदिक काल में भी वैदिक काल के समान स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था किन्तु इस काल में शिक्षा प्राप्त करने का एकमात्र उद्देश्य केवल एक अच्छी पत्नी (गृहिणी) बनना रह गया था, व्यक्तिगत विकास और स्वतंत्रता शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहे थे। इस काल में विवाह की न्यूनतम आयु भी वैदिक काल की तुलना में घट गई जिससे स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिल पाया।

ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्टत: प्रतिभासित होता है कि उस समय स्त्रियाँ वेदाध्ययन एवं यज्ञ-सम्पादन की पूर्ण अधिकारी थीं। सुदीर्घ काल तक भारत में शिक्षा से तात्पर्य वैदिक शिक्षा से ही था तथा यज्ञ में सम्मिलित होना बिना किसी लिंग भेद के वैदिक शिक्षा ग्रहण करने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। दीर्घ काल तक परिवार ही एकमात्र शिक्षण संस्था थी जहाँ बालिकाएँ अपने संबंधियों या परिवारजनों से शिक्षा ग्रहण करती थीं। अनेक महिलाएँ अध्यापिकाओं का जीवन व्यतीत करती थीं। ऐसी स्त्रियाँ 'उपाध्याया' कहलाती थी।

पणिनी ने भी 'उपाध्याया' एवं 'आचार्या' स्त्रियों पर प्रकाश डाला है। पाणिनी ने महिला-शिक्षण शाला का उल्लेख किया है। सह शिक्षा का प्रचलन था। वाल्मीकि आश्रम में आत्रेयी ने लव और कुश के साथ शिक्षा ग्रहण की थी। भरिवसु और देवराट् के साथ कामन्दकी ने गुरुकुल में अध्ययन किया था। इस युग की कन्याएँ ललित कलाओं में भी निपुण होती थीं। वे कौशलपूर्वक नृत्य करती थीं।

शतपथ ब्राह्मण में (3/2/4/6) में स्पष्ट कहा गया है—

''औरतों को वह व्यक्ति आसानी से जीत सकता है जो उनके सामने मधुर गाता है और उत्साहपूर्वक नृत्य करता है।''[2] (हिन्दू सभ्यता में महिलाओं की स्थिति, पृष्ठ सं. 23)

इस काल में वे नृत्य, संगीत, गान, चित्रकला आदि व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करती थीं।

आरण्यक एवं उपनिषदों के अध्ययन से नारी शिक्षा के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। उपनिषद् काल तक वेदाध्ययन से स्त्रियों को विमुख नहीं किया गया था। वे वैदिक अध्ययन में तत्पर रहती थीं। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ राजसभा में अपने चिन्तन का उद्घोष करती थीं। इस क्रम में गार्गी, वाचक्नवी का अद्वितीय स्थान है। विदेहराज की विद्वन्मण्डली में याज्ञवल्क्य भी गार्गी के उत्तर देने में पूर्ण सफल न हो पाये

थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद, गार्गी की तीक्ष्ण तथा विवादशीला प्रज्ञा का परिचायक है। गार्गी याज्ञवल्क्य से दो प्रश्नों को लेकर इस प्रकार उपस्थित होती है जिस प्रकार काशी या विदेह के कोई वीर व्यक्ति शत्रु प्रताड़न के लिए प्रत्यक्षरहित धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का उपक्रम कर रहे हों।[3]

गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद से गार्गी की तीक्ष्ण तथा विवादशीला प्रज्ञा का परिचय प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में राधाकुमुद मुखर्जी ने स्पष्टत: कहा है—

''उन दिनों की महिलाओं को उच्चतम ज्ञान की पहुँच थी और उन्होंने देश के बौद्धिक जीवन में गार्गी और मैत्रेयी जैसी ब्रह्मवादिनी के रूप में अपनी भूमिका निभाई थी.....''[4]

सूत्र साहित्य (श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शूल्वसूत्र) का अवलोकन करने पर इसमें स्त्रियों का स्थान प्रत्येक दृष्टि से समुन्नत अवस्था को प्राप्त होता दृष्टिगत होता है। वे विद्यासम्पन्न होती थीं तथा विद्यालयों में वे उपाध्याया और आचार्या पद पर प्रतिष्ठित होती थी। मैत्रेयी, प्राचितेयी, गार्गी, वाचक्नवी, सुलभा आदि स्त्री ऋषिका के रूप में उल्लेखित है।[5] गोभिल गृह्यसूत्र में स्त्रियों के उपनयन संस्कार का भी निर्देश है (2/1/19)। अत: सूत्रकाल में स्त्री शिक्षा सुव्यवस्थित रूप में थी। ब्रह्मचर्य के तीनों नियम—अग्नि में हवन करना, वेदों का अध्ययन करना तथा भैक्ष्यचर्या स्त्रियों के लिए लागू होते थे। इस काल में माता-पिता परमेश्वर से पण्डिता व ब्रह्मवादिनी पुत्री की कामना किया करते थे।

स्मृतिकाल में नारी शिक्षा का तेजी से ह्रास हुआ। बालिकाओं का उपनयन संस्कार समाप्त हो गया था, अत: नारियों के लिए वैदिक शिक्षा एवं संस्कारों में वैदिक मन्त्रोचारण को निषेध कर दिया गया था। अत: स्त्रियाँ न स्वयं वेद मन्त्रों का उच्चारण कर सकती थीं न ही याज्ञिक कर्म-काण्ड या धार्मिक अनुष्ठान कर सकती थी।[6] स्त्रियों के उपनयन संस्कार का अधिकार छिन जाने का मुख्य कारण बाल-विवाह को प्रोत्साहन मिलना तथा उनकी शिक्षा को महत्त्व नहीं देना था। स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित रह गया था। वे शिक्षा के लिए अब किसी आचार्य कुल में नहीं जाती थी। घर पर ही रहते हुए अपने पिता, चाचा, भाइयों से ही शिक्षा ग्रहण करती थी।[7]

अब स्त्रियों की शिक्षा का केन्द्र घर की चार-दीवारी रह गई थी। शिक्षा के विषय चित्रकला, माल्यग्रन्थन, बागवानी, खिलौने बनाना, गृहसज्जा इत्यादि ही रह गये थे।[8] कन्याओं को सूत कातने तथा वस्त्र बुनने की शिक्षा भी दी जाती थी। इसका उद्देश्य अर्थोपार्जन नहीं था किन्तु विषम परिस्थितियों में जीविकाविहीन विधवायें कर्त्तन द्वारा धनोपार्जन करके अपना व अपने बच्चों का भरण-पोषण कर सकती थी।

जैन और बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि कुछ भिक्षुणियों ने साहित्य के विकास और शिक्षा में अपूर्व योगदान दिया जिसमें अशोक की पुत्री संघमित्रा प्रमुख थी। जैन साहित्य से जयंती नामक महिला का पता चलता है जो धर्म और दर्शन के ज्ञान की प्यास में अविवाहित रही और अन्त में भिक्षुणी हो गई। बौद्धों ने अपने अपने विहारों में भिक्षुणियों की शिक्षा की व्यवस्था की थी किन्तु कालान्तर में उसके भी उदाहरण प्राप्त नहीं होते। वस्तुत: कन्याओं के लिए पृथक पाठशालाएँ न थीं। जिन कन्याओं को गुरुकुल में अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता था वे पुरुषों के साथ ही अध्ययन करती थीं। ये उद्धरण इस बात के प्रमाण है कि उस युग में साधारणत: स्त्रियाँ ज्ञान-पिपासु थी तथा ज्ञान के अन्वेषण और उसकी प्राप्ति में तल्लीन रहती थी। ब्रह्मचर्य का जीवन-यापन करके वे अत्यन्त मनोनिवेशपूर्वक ज्ञानार्जन करती थी। एक जातक से विदित होता है कि एक जैन पिता की चार पुत्रियों ने देश का भ्रमण करते हुए लोगों को दर्शनशास्त्र पर वाद-विवाद करने के लिए चुनौती दी थी।[9] जैन साहित्य से भी विदुषी स्त्रियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कौशाम्बी शासक की पुत्री जयन्ता ज्ञान और दर्शन में पारंगत थी। बौद्ध काल में गणिकाओं का उल्लेख मिलता है जो नृत्य कला में शिक्षित होती थी।

मौर्यकाल में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को जानने का प्रमुख स्त्रोत कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' है। अर्थशास्त्र में स्त्री के लिए 'असूर्यंपश्या' (सूर्य को न देखने वाली), अवरोधन तथा अन्त:पुर (दुर्ग में अन्दर रहने वाली) इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। सम्भ्रात घर की स्त्रियाँ प्राय: घर के अन्दर ही रहती थी। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को '**अनिष्कासिनी**' कहा है। इससे पर्दा-प्रथा के होने का प्रमाण मिलता है जो निश्चय ही उस काल में स्त्री शिक्षा में बाधक रहा होगा। इस काल में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक नहीं थी। उनकी स्वतंत्रता

और स्वच्छन्दता के स्थान पर परतंत्रता और संकीर्णता का आरम्भ होने लगा था। इस काल में मुख्य रुप से संगीत, नृत्य तथा चित्रकला में स्त्रियों को निपुणता प्रदान की जाती थी। कुछ स्त्रियाँ सैन्य शिक्षा भी प्राप्त करती थी।

मैगस्थनीज ने अपनी पुस्तक '**इण्डिका**' में लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की अंगरक्षक स्त्रियाँ ही थी। जब वह (चन्द्रगुप्त) शिकार पर जाता था तो कुछ स्त्रियाँ रथ पर, कुछ घोड़ों व कुछ हाथियों पर भी साथ जाती थी तथा वे अस्त्र-शस्त्रों से इस प्रकार लैस होती थी कि मानों वे युद्ध करने जा रही हो। कौटिल्य भी स्त्री अंगरक्षकों के होने का प्रमाण देता है जो निश्चय ही उस काल में सैन्य शिक्षा प्रदान किये जाने के तथ्य की ओर इंगित करता है।

वैदिक युग में स्त्री को सम्पत्ति में अधिकार देना स्वीकार किया जाता था किन्तु मौर्य काल तक आते-आते स्त्री शिक्षा पर अनेक प्रतिबंध लग गये, जिसके कारण स्त्री का सम्पत्ति विषयक अधिकार भी क्षतिग्रस्त हुआ। सम्राट अशोक ने अपनी पुत्री को लंका में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भेजा। उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी जो उसके शिक्षित होने का स्वत: प्रमाण है। यद्यपि मौर्य काल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक काल की तुलना में निम्न हो गई थी तथापि स्त्रियों को ललित कला की शिक्षाएँ प्रदान की जाती थी।

मौर्योत्तर काल की बात करें तो दूसरी सदी ई. पूर्व तक स्त्री का उपनयन संस्कार व्यवहारत: बन्द हो चुका था। विवाह के अवसर पर ही उसका उपनयन संस्कार सम्पन्न कर दिया जाता था। इस सम्बन्ध में मनु का कथन है-

वैवाहिको विधि: स्त्रीणां संस्कारों वैदिको मत:।
पतिसेवा गुरौर्वासौ गृहार्थोग्नि परिक्रिया।।[10]

(मनुस्मृति, 2.67)

अर्थात् पति ही कन्या का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन संस्कार, पति की सेवा ही उसका आश्रम-निवास और गृहस्थी के कार्य ही दैनिक धार्मिक अनुष्ठान थे। स्मृतिकारों ने व्यवस्था दी कि बालिकाओं के उपनयन में वैदिक मन्त्र नहीं पढ़ना चाहिए।[11] कालांतर में शूद्रों की ही तरह वेदों के पठन-पाठन और यज्ञों के सम्मिलित होने के अधिकार से भी वह वंचित कर दी गई। वस्तुत: शिक्षण संस्थाओं और गुरुकुलों में जाकर ज्ञान प्राप्त करना कन्या के लिए अतीत की बात हो गई थी। वह केवल माता, पिता, भाई, बंधु आदि से अपने घर पर ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। परवर्ती भाष्यकार मेधातिथि, विश्वरूप और अपरार्क की भी यही व्यवस्था है।

पूर्वगुप्त काल तक आते-आते नारी शिक्षा का प्रसार अवरूद्ध हो चुका था, किन्तु अभिजात वर्ग में सुसंस्कृत और सुबोध स्त्रियों की कमी नहीं थी। काव्य, संगीत, नृत्य, वाद्य और चित्रकला में भी वे प्रवीण होती थी। ऐसी भी स्त्रियाँ हुई हैं जो शासन व्यवस्था और राज्य के प्रबंध में दक्ष होती थी तथा शासक अथवा अभिभावक के अभाव में स्वयं प्रशासन का संचालन करती थीं। दूसरी सदी ईस्वी पूर्व में आंध्र-सातवाहन वंशीय राजमाता नयनिका ने अपने अल्पवयस्क पुत्र का संरक्षण करते हुए स्वयं प्रशासन का भार सम्भाला था। इन विवरणों से पूर्वगुप्त काल में नारी के शिक्षित होने के प्रमाण मिलते है तथा यह प्रकट होता है कि महिलाएँ समय पड़ने पर राज्य के संचालन में भी अग्रणी रहती थीं तथा अपनी अनुपम बुद्धिमत्ता और कुशलता से अपने राज्य का प्रशासन करती थी।

निष्कर्ष

वेद नारी को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व गरिमामयी उच्च स्थिति प्रदान करते हैं। वेदों में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा, शील, गुण, कर्त्तव्य, अधिकार व सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक भूमिका का जैसा वर्णन मिलता है, वैसा संसार के अन्य किसी धर्मग्रन्थ में नहीं मिलता। है। वैदिक ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता संस्कृति, धर्म-दर्शन, सामाजिक और नैतिक व्यवस्था के निर्माण में जितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका पुरुष ऋषियों की रही, उतनी ही स्त्री ऋषियों की भी रही है परन्तु यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि पूर्वगुप्त काल तक आते-आते नारी शिक्षा में अवनति देखने को मिलती है। केवल अभिजात वर्ग के लोगों में ही स्त्रियों का शिक्षा दिलाने का चलन देखने को मिलता है। प्राचीन काल में जहाँ शिक्षा दिलाने का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति था वहीं पूर्वगुप्त काल तक आते-आते यह घरेलू कार्यों यथा घर की साज-सज्जा, पकवान बनाना, माल्यग्रन्थन, बागवानी इत्यादि रह गया जो निश्चित तौर पर महिला शिक्षा के क्षेत्र की संकीर्णता को सूचित करता है।

सन्दर्भ सूची

1. घोष, इला, ऋग्वैदिक ऋषिका, जीवन एवं दर्शन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2007, पृ.सं. 9
2. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, द पोजिशन ऑफ वुमन इन दी हिन्दू सिविलाइजेशन, द कल्चर पब्लिकेशन हाउस, बनारस, 1938, पृ.सं. 23
3. झा, अच्युतानन्द (सम्पादक), बृहत्संहिता, चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी, 1959, पृ.सं. 12, 13
4. मुखर्जी, राधाकुमुद, प्राचीन भारत, प्रागैतिहासिक काल से लेकर हर्षवर्धन के बाद तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं. 69
5. शर्मा, डॉ. गजानन्द, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980, पृ.सं. 35, 36
6. कुमारी, सुमन, भारतीय संस्कृति में नारी, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं. 269, 270
7. विद्यालंकार, डॉ. सत्यकेतू, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, प्रकाशक सरस्वती सदन, मसूरी, 1968, पृ.सं. 215, 216
8. मिश्र, डॉ. उर्मिला प्रक ाश, प्राचीन भारत में नारी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2012, पृ.सं. 46, 47
9. कौशल्यायन, डॉ. भदन्त आनंद् जातक कथाएँ, सिद्धार्थ बुक्स पब्लिकेशन, दिल्ली, 2019, पृ.सं. 63
10. झा, महामहोपाध्याय गंगानाथ, मनुस्मृतिः मेधातिथि का मनुभाष्य, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1932, पृ.सं. 110
11. उपर्युक्त, पृ.सं. 111